



## खण्ड 4

# धर्म और राजनीति

## **खण्ड 4 परिचय**

---

यह खंड धर्म और राजनीति के बीच संबंधों के बारे में है। यह धर्म एवं राज्य के बीच संबंधों की प्रकृति, धर्म एवं समुदाय, व्यक्ति के लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता जैसे मुद्दों की चर्चा करता है। इकाई 9 धर्म-निरपेक्षता के बारे में है। इकाई संख्या 10 में सांप्रदायिकता के बारे में विस्तृत विवरण दिया गया है तथा व्यक्तियों के अधिकार एवं राज्य की भी चर्चा की गई है।



## **इकाई 9 धर्मनिरपेक्षता\***

### **इकाई की रूपरेखा**

- 9.0 उद्देश्य
- 9.1 परिचय
- 9.2 धर्मनिरपेक्षता क्या है?
- 9.3 भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता
- 9.4 “धर्मनिरपेक्षता-विरोधी” (“एंटी-सेक्युलेरिज्म”)
- 9.5 धर्मनिरपेक्षता और धार्मिक समूह
- 9.6 सारांश
- 9.7 संदर्भ सूची
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### **9.0 उद्देश्य**

इस इकाई का उद्देश्य भारत में धर्मनिरपेक्षता के प्रमुख मुद्दों के बारे में जानकारी प्रस्तुत करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- धर्मनिरपेक्षता एवं धर्मनिरपेक्षीकरण की व्याख्या कर सकेंगे;
- धर्मनिरपेक्षता से संबंधित मुद्दों की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारत में धर्मनिरपेक्षता पर बहस के प्रमुख तर्कों को समझा सकेंगे; तथा
- इस इकाई की तुलना इकाई 10 से करके धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के बीच अंतर को रेखांकित कर सकेंगे।

### **9.1 परिचय**

धर्मनिरपेक्षता विश्व में आज के राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। “21 लेसन्स फॉर द 21st सेंचरी” के लेखक युवाल नोहा हरारी ने 21वीं सदी में धर्मनिरपेक्षता को सबसे प्रमुख 21 मुद्दों में शामिल किया है। भारत में भी, धर्मनिरपेक्षता बहुत लोकप्रिय और राजनीतिक एवं शैक्षिक मुद्दा बन गया है। कुछ प्रश्न हमेशा धर्मनिरपेक्षता के बारे में उठाये जाते हैं: इसका धर्म के साथ संबंध, राज्य एवं अन्य संस्थाओं के संबंध, विश्वास, धार्मिक समुदाय, व्यक्ति का स्थान, लोकतांत्रिक मूल्य, स्वतंत्रता, धार्मिक समानता एवं नैतिक मूल्य।

### **9.2 धर्मनिरपेक्षता क्या हैं?**

धर्मनिरपेक्षता का प्रमुख मुद्दा धर्म है। समाज में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है कि किसी एक धर्म की सर्वोच्चता, धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव तथा उनके साथ उत्पीड़न (persecution) में परिणित नहीं होती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है धर्मनिरपेक्षता का अर्थ इस पर निर्भर करता है कि धर्म का संबंध राज्य एवं अन्य संस्थाओं, आस्था, धार्मिक समुदाय,

\*प्रो. जगपाल सिंह, राजनीति विज्ञान संकाय, इग्नू, नई दिल्ली। इस इकाई को पाठ्यक्रम BPSC-132 (यूनिट 13) से लिया गया है।

व्यक्ति का स्थान, लोकतांत्रिक मूल्यों(स्वतंत्रता एवं धार्मिक समानता)तथा नैतिक मूल्यों के साथ किस प्रकार का है। धर्मनिरपेक्षता के तीन प्रकार के अर्थ हैं: - प्रथम, यह धर्म एवं राज्य के बीच संबंधों के बारे में चर्चा करती है दूसरा, भारत में इसकी प्रासंगिकता की संभावना या असंभावना के बारे में है तथा तीसरा, सभी धर्मों के साथ इसका समान रूप से सम्मान करना अर्थात् सर्व-धर्म-सम्भाव। इन सभी पहलुओं पर संविधान सभा के अंदर भी बहस हुई थी। जैसा कि आप इस इकाई में पढ़ेंगे, भारत में धर्मनिरपेक्षता के ऊपर संविधान सभा में बहस, तथा शैक्षिक जगत में बहस में धर्मनिरपेक्षता के इन तीनों अर्थों को छुआ है। संविधान सभा के अंदर भी इन सभी या कुछ मुद्दों पर बहस शुरू हुई थी।

राजीव भार्गव के अनुसार, धर्मनिरपेक्षता की सफलता प्रमुख कारकों पर निर्भर करती है। ये कारक हैं लोकतंत्र और राज्य की उस पर समाज के विभिन्न वर्गों एवं जनजातिय समूहों के दबाव से स्वतंत्रता। यह तभी संभव है जब राज्य की उपस्थिति हो। लोकतंत्र स्वच्छ राजनीति पर निर्भर करता है, अर्थात् सभी वर्गों के बीच शांतिपूर्ण प्रतिस्पर्धा या हिंसा के बिना प्रतिस्पर्धा। वास्तव में, धर्मनिरपेक्षता कुछ मूल्यों पर टिकी है जो कि लोकतंत्र एवं समान नागरिकता से संबंधित है। युवाल हरारी ने यह रेखांकित किया कि, धर्म-निरपेक्ष समाज में लोग विभिन्न धर्मों से संबंध रखते हैं जैसे हिन्दु, मुस्लिम, पारसी और नास्तिक। ये कुछ निश्चित मूल्यों का पालन करते हैं। ये कोड कुछ नैतिक मूल्यों और धर्म-निरपेक्ष आदर्शों पर टिके हैं जैसे सत्य, करुणा, समानता, स्वतंत्रता, साहस एवं उत्तरदायित्व। धर्म-निरपेक्षवादियों के लिये सत्य विश्वास से अलग है तथा सत्य का कोई एक स्त्रोत नहीं है। करुणा या दया का मतलब “पीड़ा को समझना” या सबसे संभव तरीके से संसार की पीड़ा कम करना है। क्योंकि पीड़ा या कष्ट सार्वभौमिक है, सत्य और करुणा भी समानता की प्रतिबद्धता का परिणाम है। सत्य की खोज सोचने की स्वतंत्रता से प्राप्त की जा सकती है एवं उसके साथ प्रयोग एवं जाँच से भी प्राप्त की जा सकती है। साहस का मतलब पक्षपात एवं दमन या उत्पीड़न से मुकाबला करना है, अर्थात् अज्ञानता को स्वीकार करना तथा “अंजानी वस्तु की खोज करना है।” उत्तरदायित्व का मतलब है समाज की समस्याओं के समाधान के लिए किसी उच्च शक्ति पर निर्भर न करना कोई भी दैविक शक्ति इसे दूर नहीं कर सकती है। मानवीय विकास स्वयं के ज्ञान एवं उनकी करुणा पर निर्भर करता है।

डी.ई. स्मिथ के अनुसार धर्म निरपेक्षता किसी धर्म-निरपेक्ष राज्य में भी हो सकती है। धर्म-निरपेक्ष राज्य क्या है? डी.ई. स्मिथ के “इंडिया इज ए सेक्यूलर स्टेट” के मॉडल में, धर्म-निरपेक्ष राज्य की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है :- इसका संबंध तीन विषयों से है पहला, व्यक्ति एवं धर्म के बीच संबंधों से राज्य दूर रहे (धार्मिक स्वतंत्रता); दूसरा, राज्य व्यक्ति एवं राज्य के बीच संबंधों से धर्म दूर रहे (व्यक्ति एक नागरिक के रूप में) तथा तीसरा, राज्य को निरपेक्ष रहना चाहिए। स्मिथ के दृष्टिकोण में, भारत एक सफल लोकतंत्र वाला देश है जहाँ पर धर्मनिरपेक्षता की विशेषताएँ हिन्दू धर्म में स्थित है। लेकिन भारत में धर्म निरपेक्ष राज्य की कुछ चुनौतियों भी हैं क्योंकि जाति एवं समुदाय के प्रति निष्ठा कभी भी आपसी कलह या सांप्रदायिक विभाजन में बदल सकती है। लेकिन गैलेन्टर ने स्मिथ की परिभाषा को सही नहीं माना, उनकी आलोचना करते हुए कहा कि भारतीय राज्य धर्मनिरपेक्षता के मूल सिद्धांतों से अलग हो रहा है क्योंकि यह धार्मिक स्कूलों एवं संस्थाओं को आर्थिक मदद करता है, हिन्दूवाद को बढ़ावा देता है तथा यह धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांतों से समझौता करता है। उनके अनुसार धर्मनिरपेक्षता राज्य की सफलता उसकी धर्म की एक नैतिक अवधारणा पर निर्भर करती है अर्थात् उसके पास धर्म का विश्लेषण करने तथा इस पर निर्णय लेने की क्षमता है। उनकी राय में भारत में धर्मनिरपेक्षता के साथ समझौता संविधान सभा की बहसों में देखा जा सकता है जहाँ पर धार्मिक स्वतंत्रता (धार्मिक पूजा की स्वतंत्रता, राज्य भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यकों की पहचान), पूजा अर्चना, नागरिकता

(सार्वभौमिक आचार संहिता, धार्मिक आधार पर आरक्षण), राज्य की निरपेक्षता तथा (क्या सरकारी मदद पाने वाले स्कूलों को राज्य निर्देश दे) पर बहस हुई।

अकिल बिलग्रामी धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत, जिसमें केवल राज्य निरपेक्ष एवं विभिन्न धर्मों से समान दूरी की अवधारणा हो, को चुनौती देते हैं। वे इस सिद्धांत को खारिज करते हैं तथा एक वैकल्पिक सिद्धांत प्रदान करते हैं। उनका तर्क है कि धर्मनिरपेक्षता प्रत्येक ऐतिहासिक संदर्भ में नहीं उदित होती है। यह किसी विशेष संदर्भ में ही उदित होती है। यह उस परिपेक्ष में उदित होता है जहाँ “बहुलवाद” की आशंका है। यह उन परिस्थितियों में भी देखी जा सकती है जो आधुनिक नहीं है। धर्मनिरपेक्षता, निरपेक्ष एवं निरपेक्षीकरण से अलग है। धर्मनिरपेक्षता एक राजनीतिक सिद्धांत है। कोई भी व्यक्ति धर्म-निरपेक्ष हो सकता है और वह भी समान रूप से धार्मिक पहचान रख सकता है।

### 9.3 भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता

भारतीय संविधान को 26 जनवरी, 1951 को लागू किया गया था तब इसमें धर्म-निरपेक्ष शब्द को शामिल नहीं किया। यद्यपि धर्मनिरपेक्षता को संविधान में शामिल नहीं किया गया हो लेकिन सत्यता यही है कि जब भारत लोकतांत्रिक देश बना तब इसके मौलिक सिद्धांतों में धर्मनिरपेक्षता निहित थी। लेकिन बाद में 42 वें संशोधन के माध्यम से इसे 1976 में संविधान की प्रस्तावना में जोड़ा गया। तत्पश्चात् सर्वोच्च न्यायालय ने बोम्मई केस में निर्णय देते हुए इसे संविधान की मूल विशेषता भी माना था। संविधान के अनुच्छेद 25-30 के अंतर्गत भी धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकार का प्रावधान दिया गया है जो कि संविधान सभा की बहसों से निकल कर आया था। ये सब धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों की महत्ता को इंगित करते हैं। कुछ प्रश्नों पर संविधान सभा में बहस हुई थी : क्या धर्मनिरपेक्षता को भारतीय संविधान में शामिल किया जाना चाहिये या नहीं, भारत किस प्रकार का धर्म-निरपेक्ष राज्य होना चाहिये। (“एक धार्मिक देश में एक धर्म निरपेक्ष राज्य”), क्या राज्य की धर्म से दूरी धर्मनिरपेक्षता का प्रमाण है, क्या एक धर्म निरपेक्ष राज्य एक धर्म निरपेक्ष समाज पर निर्भर करता है, क्या वह राज्य जो सभी धर्मों का समान आदर करे, कुछ प्रश्न थे जिन पर संविधान सभा ने 17 अक्टूबर, 1949 को चर्चा की थी। इन प्रश्नों पर संविधान सभा में राय अलग-अलग थी। लेकिन अंततया, संविधान सभा ने यह निर्णय लिया कि संविधान की प्रस्तावना में धर्म-निरपेक्ष शब्द को शामिल नहीं किया जायेगा। फिर भी सभी सदस्यों के बीच यह सहमति बनी कि भारत को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य स्थापित किया जाये, तथा अधिकांश सदस्यों में यह भी सहमति बनी कि राज्य को धर्म से अलग रहना समाज के लोकतांत्रिकरण से संबंधित है।

शेफाली झा ने धर्मनिरपेक्षता पर तीन वैकल्पिक तर्कों की पहचान की जो कि संविधान सभा की बहस में दिए गए थे। उसके अनुसार पहला तर्क यह था कि “धर्मनिरपेक्षता का कोई सिद्धांत नहीं” है। इस तर्क के मानने वालों का यह कहना है कि राज्य को धर्म के बारे में नहीं सोचना चाहिये। धर्म व्यक्ति का निजी मामला है तथा धर्म और राज्य दोनों को इससे अलग रहना चाहिये। लोगों को धर्म की उपासना करने की स्वतंत्रता है क्योंकि यह उनका निजी मसला है। राज्य को व्यक्ति की पहचान एक नागरिक के रूप में करनी चाहिए न कि धार्मिक स्मिता के रूप में। इस तर्क के मुख्य समर्थकों में के.टी. शाह, ताजमुल हुसैन तथा एम. मसानी शामिल हैं। दूसरा तर्क यह भी है कि धर्म और राज्य को अलग होना चाहिये। लेकिन उनका तर्क पहले तर्क के विपरीत था। पहला तर्क धर्म को निजी मसला बताता है जबकि दूसरा तर्क धर्म को परम सत्य (absolute truth) बताता है। धर्म के साथ संबंध राज्य को कमजोर ही नहीं करेगा, लेकिन इससे धर्म का महत्व कम होगा। तीसरा

तर्क जो कि शेफाली प्रस्तुत करती है वह है “धर्मनिरपेक्षता का समान सम्मान का सिद्धांत”। अर्थात् राज्य को सभी धर्मों का सम्मान करना चाहिये क्योंकि भारत में धर्म लोगों के जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा है तथा राज्य को एक समान रूप से सभी धर्मों से दूरी रखनी चाहिए। इस तर्क के सबसे ज्यादा समर्थक के.एम. मुंषी थे। उन्होंने तर्क दिया “हमें एक भारतीय विशेषताओं वाली धर्मनिरपेक्षता का विकास करना है”। उनका मानना था कि भारत का कोई राज्य-धर्म नहीं हो सकता तथा धर्म और राज्य के बीच एक स्थिर रेखा भी नहीं खींची जा सकती है। इस मत के अनुसार एक ऐसी धर्मनिरपेक्षता जो धर्म के निरादर पर आधारित हो। क्योंकि अधिकांश धर्म सहनशीलता का पाठ पढ़ाते हैं, यदि राज्य सार्वजनिक क्षेत्र में धर्म को मान्यता देती है तो इससे धार्मिक झगड़े नहीं बढ़ेंगे। यज ग्रन्थ नारायण का मानना था कि धर्म से नहीं बल्कि धर्म के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस्तेमाल करने से सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा मिलता है।

### बोध प्रश्न 1

**नोट:** क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

- 1) धर्मनिरपेक्षता क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) संविधान सभा में धर्मनिरपेक्षता के ऊपर प्रमुख बिन्दुओं की चर्चा पर बहस के कौन-कौन से बिन्दु थे?

.....

.....

.....

.....

.....

### 9.4 “धर्मनिरपेक्षता विरोधी” (“एंटी-सेक्युलरिज्म”)

जो बिंदु धर्मनिरपेक्षता के संबंध में संविधान सभा में चर्चित थे वे बाद में भी चर्चा में आये। इनके एक सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु था “जिसे धर्मनिरपेक्षता विरोधी” (“एंटी-सेक्युलरिज्म”) के नाम से जाना गया है। जैसा कि संविधान सभा में भी तर्क दिया गया था, इस तर्क के मानने वाले धर्मनिरपेक्षता के विरोधी नहीं हैं लेकिन वे धर्म और राज्य को अलग मानने के सिद्धांत के खिलाफ हैं। वे दोनों ही सिद्धांतों यानि कि सांप्रदायिकता-कट्टरवाद (हिन्दुत्वा) एवं धर्मनिरपेक्षता के आलोचक हैं। इनके अनुसार क्योंकि भारतधार्मिक समाज है इसलिये धर्म और राज्य को अलग नहीं किया जा सकता है। वे राज्य एवं धर्म को अलग मानने के

सिद्धांत को पश्चिमी सिद्धांत मानते हैं, जो कि भारत जैसे धार्मिक देश के लिये मान्य नहीं है। वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की जड़ भारतीय परंपरा में निहित है, जो कि सहनशील है। धर्मनिरपेक्षता को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सभी धर्मों का सम्मान अर्थात् “सर्व धर्म समभाव” हो। धर्मनिरपेक्षता विरोधी लोगों में भीखू पारेख, टी. एन. मदान और आशीष नंदी प्रमुख हैं। विशेष रूप से मदान यह मानते हैं कि धर्मनिरपेक्षता इसाइ धर्म की देन हैं, नंदी अपनी आलोचना को एक “एंटि-सेक्यूलरज्म ऐजेंडा” (धर्मनिरपेक्षता विरोधी ऐजेंडा) की संज्ञा देते हैं। अचिन वनायक के अनुसार वे भारतीय समाज के छः सामान्य विषयों पर फोकस करते हैं वे हैं:- आधुनिकता, संस्कृति की समझ, सभ्यता, धर्म और हिन्दुवाद, भूत एवं वर्तमान, तथा धर्मनिरपेक्षता एंव धर्म-निरपेक्षीकरण: विशिष्टता एवं सार्वभौमिक, व्यक्तिवाद एवं समुदायवाद तथा नव-गाँधीवाद। उनमें एक समान बिंदु पर सहमती है। वह बिंदु है: राज्य का सभी धर्मों के साथ एक जैसा व्यवहार, एक सम्मान करना चाहिये और भारतीय समाज एक सहनशील परंपरा का समाज है।

राजीव भार्गव का यह तर्क है कि धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत की पुनः व्याख्या या पुनः समीक्षा करने की जरूरत है। राज्य एवं चर्च के संबंधों पर फोकस करने के बजाय निम्न बिंदुओं पर अधिक फोकस करना चाहिये, (i) धर्मनिरपेक्षता को धार्मिक विविधता के आधार पर देखना चाहिए, (ii) विविधता को सत्ता संबंधों के रूप में समझना चाहिये, धर्म-संबंधी प्रभुत्व की क्षमता को भी समझना चाहिए, (iii) दो तरीके धर्मनिरपेक्षता को संस्थात्मक धर्म के प्रति उत्तर के रूप में देखना धर्मनिरपेक्षता के अर्थ समझने में मदद कर सकते हैं: धर्म के विरुद्ध नहीं है तथा यह यह धर्म आधारित को संस्थागत प्रभुत्व का विरोधी है, (iv) केवल सैद्धांतिक दूरी के सिद्धांत द्वारा धर्म-निरपेक्ष राज्य सभी धर्मों के साथ सम्मान कर सकता है। वे भारतीय धर्मनिरपेक्षता को सैद्धांतिक दूरी के सिद्धांत के अनुसार देखते हैं। सैद्धांतिक दूरी की अवधारणा राज्य के धर्म के समावेशी के विषय पर लचीला दृष्टिकोण दर्शाता है तथा धर्म के साथ राज्य अपना संबंध रखे या न रखे तथा कानून और व्यवस्था किस आधार पर राज्य धर्म के मामले में हस्तक्षेप करे, यह परिपेक्ष पर निर्भर करता है”। वे धर्मनिरपेक्षता को दो प्रकार की मानते हैं, एक राजनीतिक तथा दूसरी निरपेक्षता।

कुछ अन्य विद्वानों (स्मिथ और तांबिया) के अनुसार, भारत में धर्मनिरपेक्षता संकट का सामना कर रही है। इसके लिये आंतरिक एवं बाहरी कारक जिम्मेदार है। बाहरी कारकों में कॉंग्रेस का कमजोर होना, राज्य की केन्द्रिकरण सत्ता में वृद्धि, 80 के दशक के पंजाब एवं कश्मीर में अलगाववादी आंदोलन और मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करना, आंतरिक कारकों में शामिल है। विश्व दृष्टिकोण को संपूर्ण दृष्टि से देखना जिसमें धर्मनिरपेक्षता भी इसका भाग है (मैदान एवं नंदी), तथा समान दूरी की माँग जो कि कोई भी राज्य स्वीकार नहीं कर सकता (चटर्जी)।

## 9.5 धर्मनिरपेक्षीकरण और धार्मिक समूह

धर्मनिरपेक्षता और निरपेक्षीकरण दोनों अंतर्संबंधी अवधारणाएं हैं। लेकिन शैक्षिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में धर्मनिरपेक्षता पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। इकनॉमिक एंड पालिटिकल वीकली (वो. 58 नं. 50 दिसं. 14, 2013) में प्रकाशित कई लेखकों में धर्म निरपेक्षीकरण की चर्चा की गयी है तथा इसके संबंधों के विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में भी खासकर भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश के संदर्भ में चर्चा की गई है। यह धार्मिक समूहों के अधिकारों एवं व्यक्तियों के संबंधों की प्रकृति के बारे में है। यह आचार-विचार एवं नैतिकता के बारे में भी है।

धर्म-निरपेक्षीकरण का मतलब है धर्म का सार्वजनिक नीतियों एवं सामाजिक संबंधों पर प्रभाव न होना। लेकिन यह धर्म को नकारता भी नहीं है। यह दिखाता है कि धर्म किस आधार पर पक्षपात एवं भेदभाव का आधार बन जाता है। यह आधुनिकता एवं आधुनिकीकरण के बारे में है। धर्म-निरपेक्षीकरण “सामूहिक नैतिक प्रोजेक्ट” होनी चाहिये, जबकि यूरोप में धर्मनिरपेक्षता को ‘‘सामूहिक गतिविधि के कार्यक्रम’’ के आधार पर लागू नहीं किया गया (राजीव भार्गव)। धर्म-निरपेक्षीकरण की धारणा का प्रयोग करते हुए, जोया चटर्जी ने भारत एवं पाकिस्तान के विभाजन के बाद दोनों देशों के धर्म-निरपेक्षीकरण की नीति को अपनाया जो कि आंषिक थी। दोनों ने गैर-धार्मिक मुद्दों को उठाया, विशेषतौर पर विभाजन प्रभावित परिवारों के; शरणार्थियों का पुनर्वास। लेकिन धर्म-निरपेक्षीकरण आंषिक था। यह सीमित था जो कि राज्य के निम्न भागों में लागू नहीं था।

## 9.6 सारांश

**धर्मनिरपेक्षता के प्रमुखतः** दो अर्थ हैं : एक, धर्म को राज्य से अलग करना तथा दूसरा, सभी धर्मों का समान रूप से सम्मान करना अर्थात् सर्व-धर्म सम्भाव। संविधान की प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता का जिक्र नहीं था इसे 42वें संविधान संशोधन के तहत् संविधान में शामिल किया गया था। संविधान सभा में धर्मनिरपेक्षता को शामिल करने के लिये काफी चर्चा हुई थी। संविधान सभा में तीन प्रमुख तर्क थे। एक तर्क यह था कि धर्म निजी मसला है इसलिए इस पर चर्चा नहीं करनी चाहिए, दूसरा, धर्म और राज्य की बीच विभाजन होना चाहिए। ये दोनों अलग-अलग होने चाहिए, तथा तीसरा तर्क यह था कि राज्य को सभी धर्मों का सम्मान करना चाहिये, सर्व-धर्म सम्भाव।

### अभ्यास प्रश्न 2

- नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।  
 ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।  
 1) धर्मनिरपेक्षता विरोधियों के मुख्य तर्क कौन कौन से हैं?

- 2) धर्मनिरपेक्षता एवं धर्मनिरपेक्षीकरण में क्या अंतर है?

- 3) सैद्धांतिक दूरी की धारणा का क्या मतलब हैं?

धर्मनिरपेक्षता

.....  
.....  
.....  
.....

## 9.7 संदर्भ सूची

ई.पी.डब्ल्यू. इष्टु ऑन सेक्यूलराइजेशन, वो. 58, न. 50 दिसंबर 14, 2013।

चंडोक, नीरा, (1999), बीयोंड सेक्यूलरिज्म : द राइट्स एंड रिलिजियस माइनोरिटिस, नई-दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

बिलग्रामी, अकिल, (2012), सेक्यूलरिज्म : इट्स कान्टेंट एंड कान्टेक्स्ट, ई.पी.डब्ल्यू. न. 4, खंड 57,

भार्गव, राजीव (संकलित), (1999), सेक्यूलरिज्म एंड इट्स क्रिटिक्स, नई-दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

वनायक, अचिन, (2017), हिन्दूत्वा राइजिंग : सेक्यूलर क्लेम्स, क्यूमनल रीयालटीस, नई-दिल्ली, तूलिया.

हरारी, युवाल नोह, (2018), 21 लेषन्स फॉर द 21 स्ट सेंचूरी, लंदन, जोनाथन कैप।

## 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) धर्मनिरपेक्षता का संबंध धर्म, राज्य, संस्थाएँ, सामाजिक समूहों और व्यक्तियों से है। इसकी दो धारणाएँ हैं, एक धारणा यह है कि धर्म और राज्य के बीच दूरी होनी चाहिए अथवा राज्य को सभी धर्मों को समान सम्मान तथा दूसरी धारणा धर्म एवं समुदायों के बीच संबंधों के बारे में है, तथा व्यक्तियों के लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता और समानता एवं नैतिकता से है।
- 2) संविधान सभा में धर्मनिरपेक्षता पर तीन तर्क थे: एक राज्य को धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये, दूसरा, राज्य और धर्म दोनों अलग-अलग हैं क्योंकि धर्म का स्थान राज्य से ऊपर है तथा तीसरा, राज्य को सभी धर्मों के साथ समान व्यवहार एवं सम्मान करना चाहिए।

### अभ्यास प्रश्न 2

- 1) धर्मनिरपेक्षता विरोधियों को मानना है कि यह पश्चिमी अवधारणा है। भारत जैसे देश में धर्म को राज्य से अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि धर्म लोगों के जीवन का अहम हिस्सा है। वास्तविक धर्मनिरपेक्षता भारतीय परंपरा में निहित है, जिसका संबंध सहनशीलता से है। सही मायनों में धर्मनिरपेक्षता तभी जाकर प्राप्त की जा

सकती है जब हम सर्व-धर्म-समझाव के सिद्धांत को अपनाएँ। अर्थात् सभी धर्मों का सम्मान करना।

- 2) धर्मनिरपेक्षता का तात्पर्य है धर्म एवं राज्य के मध्य दूरी अथवा सभी धर्मों का समान आदर। धर्मनिरपेक्षता धर्म के राज्य की सामाजिक वर्गों से संबंधित नीतियों के प्रभाव के अभाव को दर्शाता है। इसका तात्पर्य उन नैतिक मूल्यों से भी जो विभिन्न धर्मों के अनुयाइयों के व्यवहार को निर्मित करते हैं।
- 3) सैद्धांतिक दूरी की अवधारणा को राजीव भार्गव ने प्रतिपादित किया है। इसका तात्पर्य राज्य के धर्म के साथ संबंध अथवा संबंध की कमी को एक लचीले दृष्टिकोण से देखना है तथा इसका अर्थ राज्य के धर्म के प्रति एक समावेशी या बहिश्कारी दृष्टिकोण से भी है। धर्म के समावेश या बहिश्कार, परिप्रेक्ष्य तथा धर्म की वर्तमान स्थिति पर निर्भर करता है।



## **इकाई 10 सांप्रदायिकता\***

### **इकाई की रूपरेखा**

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 सांप्रदायिकता क्या है?
- 10.3 सांप्रदायिकता की उत्पत्ति
- 10.4 सांप्रदायिकता और राज्य
- 10.5 सांप्रदायिकता और मीडिया
- 10.6 सारांश
- 10.7 संदर्भ सूची
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### **10.0 उद्देश्य**

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान पायेंगे :

- सांप्रदायिकता के अर्थ की व्याख्या करना;
- भारत में सांप्रदायिकता के विकास को समझना;
- सांप्रदायिकता और मीडिया के बीच संबंधों की चर्चा करना; तथा
- सांप्रदायिकता और राज्य के बीच संबंधों का विश्लेषण करना।

### **10.1 प्रस्तावना**

समाज में व्यक्ति या समूह के जीवन का महत्वपूर्ण पहलू उनकी पहचान है। किसी भी विविधता वाले समाज में, पहचान बनाने के कई कारक होते हैं। इसमें संस्कृति, भाषा, धर्म, रीति-रिवाज, इतिहास, क्षेत्र, अर्थव्यवस्था इत्यादि शामिल हैं। पहचान बनाने के लिए इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती है। इनकी संख्या एवं इनका प्रभाव पहचान के संदर्भ पर निर्भर करती है। यद्यपि पहचान को बनाने के कई सारे कारक होते हैं, लेकिन कभी-कभी इनमें एक या अनेक कारक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनमें यह सत्य है कि धर्म एक प्रमुख कारक है पहचान बनाने के लिए। जैसाकि हम जानते हैं, भारत एक बहु-धार्मिक समाज है, हमें यह समझना होगा कि धर्म किस प्रकार से लोगों को पहचान बनाता हैं तथा किस प्रकार से विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग अपना संबंध स्थापित करते हैं।

### **10.2 सांप्रदायिकता क्या है?**

सांप्रदायिकता एक विचारधारा है, जो किसी समुदाय के सदस्य के दृष्टिकोण को इंगित करती है। यह किसी धर्म पर आधारित होती है, या फिर किसी अन्य धार्मिक समुदायों, राष्ट्रवाद या राज्य के आधार पर होती है। बिपिन चन्द्र एवं अन्य ने अपनी पुस्तक “इंडियाज फ्रीडम स्ट्रिगिल” में सांप्रदायिक विचारधारा के तीन तत्वों को रेखांकित किया है। पहला तत्व

\*डॉ. राकेश बटबयाल, एसोसिएट प्रोफेसर, सेंटर फॉर मिडिया स्टीज जे.एन.यू. नई दिल्ली। इस इकाई को पाठ्यक्रम BPSC-132 (इकाई 14) से लिया गया है।

इस बात को रेखांकित करता है कि लोग किसी एक धर्म में विश्वास रखने वाले लोगों के गैर धर्मिक (सेक्यूलर) हित हैं, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक समान होते हैं। इस पुस्तक के लेखक इसे “सांप्रदायिक विचारधारा की प्रथम पृष्ठभूमि” मानते हैं। दूसरा तत्व इस बात की ओर इशारा करता है कि विभिन्न धार्मिक समुदाय के लोगों में ‘गैर धार्मिक’ हित - समान सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, या फिर राजनीतिक हित एक जैसे नहीं होते हैं। तीसरा तत्व यह दर्शाता है कि विभिन्न धार्मिक समुदाय के लोगों के बीच शत्रुता, प्रतिपक्षता एवं परस्पर विरोध होता है।

सांप्रदायिकता का संबंध एक अन्य धारणा से भी है वह है। सांप्रदायिक हिंसा। दोनों अलग है लेकिन इनका अंतर्संबंध भी है। सांप्रदायिकता एक जाग्रति है, और जब यह जागरूकता हिंसा में तब्दील हो जाती है किन्हीं दो धार्मिक गुटों के बीच में तब यह सांप्रदायिक हिंसा कहलाती है। विभिन्न धार्मिक समुदायों के लोग अपने आप से सांप्रदायिक नहीं बन जाते हैं। ना ही उनके संबंध अकस्मात् सांप्रदायिक हिंसा का रूप लेते हैं। ये समुदाय तभी सांप्रदायिक बनती हैं जब किसी समाज का एक वर्ग इसे उकसाता है तथा यह बाद में सांप्रदायिक दंगों का भी रूप ले लेता है। यह खास वर्ग राजनीतिक दलों के नेता, कार्यकर्ता, मध्यम वर्ग का सामुदायिक नेता हो सकते हैं। ये नेता अपने समुदाय के सदस्यों को यह समझाते हैं कि दूसरे समुदाय के लोग उनकी समस्याओं के लिए जिम्मेदार हैं। ऐसी परिस्थिति में, ये लोगों को एकत्रित या लामबंद करते हैं और फिर सांप्रदायिक हिंसा फैलती है।

सांप्रदायिकता को समझने एवं उसका अध्ययन करने के लिए विभिन्न उपागम हैं। सर्वप्रथम जो अवधारणा है वह प्रयोग सिद्ध अवधारणा जिसे विभिन्न विद्वानों जैसे अशगर अली इंजीनियर ने विभिन्न सांप्रदायिक दंगों के अध्ययन में प्रयोग किया था। उसके बाद कई अन्य विद्वानों ने भी इसी अवधारणा को अपनाया जिसमें अमृता बसु, पॉल ब्रास, आशुतोष वार्ष्ण्य इत्यादि शामिल हैं।

दूसरी अवधारणा है भौतिकवादी दृष्टिकोण, जो सामाजिक परिस्थितियों को निचले सिरे से समझने की कोशिश करता है, जिसमें राज्य की प्रकृति एवं उसकी भूमिका, विभिन्न समुदायों के संगठन निर्माण इत्यादि के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। के.टी. साह, बिपन चंद्र, अचिन वनायक, सी.पी. भांभरी, एवं आदित्य मुखर्जी इसी दृष्टिकोण के समर्थक माने जाते हैं। तीसरा दृष्टिकोण पदार्थवादी (Essenlist) दृष्टिकोण या सार तत्व दृष्टिकोण है। इसके अनुसार सभी समुदायों के लोग अलग-अलग रहते हैं तथा इनके आंतरिक संबंध उन्हें अलग-अलग रखते हैं। अमेरिकन विचारक हंटिंगटन ने अपनी पुस्तक क्लैश ऑफ सिविल इजेशन में इस दृष्टिकोण की रूपरेखा प्रस्तुत की है।

### 10.3 सांप्रदायिकता की उत्पत्ति

सांप्रदायिकता एक विचारधारा के रूप में भारत में औपनिवेशिक शासन की उपज है। इस अर्थ में यह भारत में आधुनिक समय की उपज है। इसके पूर्व में भी, हमें ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जहाँ पर धार्मिक वाद-विवाद या हिंसा होती थी। लेकिन ये इस अर्थ में सांप्रदायिक नहीं होती थी जैसा की 19वीं सदी के मध्य सांप्रदायिकता को समझा जाता है। भारत में सांप्रदायिकता मुख्य तौर पर औपनिवेशिक शासन की नीतियों की देन है, विशेषकर 1857 के विद्रोह के बाद से। औपनिवेशिक शासकों ने इस दौरान कई चुनौतियों का सामना किया और इसी कारण उन्होंने ऐसी नीतियाँ बनाई, जिन्होंने सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया। इनमें बुद्धिजीवी वर्गों द्वारा औपनिवेशिक प्रशासन की आलोचना भी शामिल

है जो कि 19वीं सदी के मध्य में भारत में उभर कर सामने आयी थी। यह बुद्धिजीवी वर्ग प्रायः नवीन अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था की उपज थी। इस बुद्धिजीवी वर्ग को यह महसूस हुआ कि, भारत के लोगों की पीड़ा औपनिवेशिक शासन की वजह से है। भाषाई, जाति एवं पंथ की सीमाओं से ऊपर उठकर इस नवीन बुद्धिजीवी वर्ग ने औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना जागृति की। इस प्रकार से इस नवीन बुद्धिजीवी वर्ग जो परंपरागत ज्ञान एवं नये पश्चिमी ज्ञान में प्रशिक्षित था, ने भारतीय लोगों की यह चेतना जताई की भारत एक राष्ट्र है। इस चेतना के कारण उन्होंने “राष्ट्रीय समुदाय” के गठन का प्रयास किया, जिसमें सभी वर्ग शामिल थे। इसके द्वारा औपनिवेशिक शासन द्वारा जो भारत की समाज एवं राजनीति छवी बनाई गई थी उसका खंडन किया गया था।

औपनिवेशिक सत्ता ने इस उभरती हुई राजनीतिक चेतना का जवाब भी दिया। अपने जवाब में उन्होंने ये स्ट्रेटेजी अपनाई। इसमें उन्होंने यह कहा कि भारत के लोग कभी भी संगठित नहीं हो सकते क्योंकि उनमें धर्म, जाति, भाषा, इत्यादि के आधार पर विविधताएं हैं; तथा दूसरा उन्होंने औपनिवेशिक ज्ञान का सृजन किया तथा तीसरा उन्होंने लोगों के मतभेदों को उजागर किया जो कि जाति, धर्म, भाषा इत्यादि के आधार पर थे तथा विधायी एवं राजनीतिक निकायों में भी धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व देने के बात कही। जेम्स मिल ने अपनी एक किताब लिखी ‘द हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया’ में इस प्रकार का ज्ञान देने का प्रयत्न किया जिसमें उन्होंने इस बात का जिक्र किया कि भारत के इतिहास को तीन भागों में धर्म के आधार पर तीन कालों में बाँटा जा सकता है। प्राचीन काल, मध्य काल एवं आधुनिक काल। मिल ने इस बात का जिक्र किया कि भारत का प्राचीन काल स्वर्णिम काल था जबकि उस वक्त हिंदुओं का शासन था। मध्यकाल में मुस्लिम शासकों ने इसे आक्रमण करके तबाह कर दिया था तथा भारत का प्राचीन स्वर्ण युग का नाश कर दिया था एवं मुस्लिम शासन की स्थापित किया तथा आधुनिक काल ने मुस्लिम शासन के अंत और इसके स्थान पर ब्रिटिश या अंग्रेजी शासन भारत में स्थापना कां इंगित किया। इस प्रकार के कालखंड का प्रयोग कुछ इतिहास विदों तथा औपनिवेशिक शासकों ने समाज को सांप्रदायिक आधार पर बाँटने के लिए किया था। क्योंकि भारत का ज्यादातर बुद्धिजीवी वर्ग हिंदु समाज के उच्च वर्ग से था, इसके विकास एवं विचारों का मुस्लिम बुद्धिजीवी तथा पारम्परिक अभिजात वर्ग ने विरोध किया। 1987 में डफरिन (वायसराय) तथा ए. कोलविन ने यह कह कर काँग्रेस पर हमला किया कि काँग्रेस साम्राज्यवाद विरोधी है। सैयद अहमद खान ने इसका समर्थन किया क्योंकि उनका मानना था कि इससे मुसलमानों का हिस्सा प्रशासन के पदों में बढ़ेगा। उनका विश्वास था कि हिंदु बुद्धिजीवी वर्ग एवं मध्यम वर्ग के विकास के कारण मुस्लिमों का प्रभुत्व घट गया है। इसका समाधान यह है कि मुसलमानों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिये उन्होंने 1875 में एंग्लो मोहम्मदन एंग्लो ओरयिन्टल कॉलेज की स्थापना की थी, जो कि बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (ए.एम.यू.) बन गया। उसी वक्त एक नये मुस्लिम मध्यम वर्ग का भी उदय हुआ। लेकिन यह मध्यम वर्ग काफी लोकप्रिय था और इसका दृष्टिकोण भी औपनिवेशिक विरोधी था। परंपरागत मुस्लिम वर्ग एवं नवीन मध्यम वर्ग की रणनीति यह थी कि वे लोक संस्थाओं में उनका प्रतिनिधित्व देने की माँग कर रहे थे। मध्यम वर्ग की शैक्षिक संस्थानों में आरक्षण और नौकरियों की माँग मुस्लिम विशिष्ट वर्ग की विधायी एवं अन्य निकायों में आरक्षण की माँग के साथ मिल गई। इसी वजह से 1906 में मुस्लिम लीग का गठन हुआ जिसे ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा भी उकसाया गया। अन्य क्षेत्रों में भी ब्रिटिश सरकार ने हिन्दु समाज के कुछ वर्गों को उकसाया ताकि काँग्रेस के अंतर्गत राष्ट्रीय एकता को बाँटा जा सके। सरकारी नौकरियों में आरक्षण की माँग तथा विधायी निकायों में मुस्लिमों को प्रतिनिधित्व देने की माँग भी हिन्दुओं के एक वर्ग ने उठायी। बाद में, इन्हीं माँगों को मुस्लिम लीग ने उठाया। वास्तव में इसके पूर्व में मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग और मुस्लिम लीग

ने मुस्लिम जमींदारों एवं मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व किया क्योंकि इन दोनों की माँग एवं दृष्टिकोण एक समान था।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार, मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हिन्दुओं की प्रतिष्ठा को बर्वाद किया जबकि कुछ इतिहासकारों के अनुसार ब्रिटिश सत्ता ने इस्लाम की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचाया। उनके अनुसार इस्लाम की प्रतिष्ठा को वापस एक बार फिर से बहाल करना होगा। यह तभी संभव है जब भारत में इस्लामिक शासन की स्थापना हो। इन दो संस्करणों ने ही द्वि-राष्ट्र के सिद्धांत को जन्म दिया। भारतवासियों को सांप्रदायिक आधार पर बॉटने की नीतियों के मद्देनजर 1909 में मार्ले मिंटो सुधार लागू किया गया, जहाँ अलग निर्वाचित मण्डल को लागू किया गया। प्रथक निर्वाचक मण्डल के अनुसार, 1909 के निगम चुनावों में, हिन्दु एवं मुस्लिम दोनों के अलग क्षेत्रों से चुनाव लड़ा जहाँ प्रत्याशी एवं मतदाता दोनों ही एक धर्म के थे। यह निर्वाचक मण्डल सांप्रदायिक विभाजन की अभिव्यक्ति थी। 1920 के दशक से और अधिक प्रतिनिधित्व की माँग तथा हिस्सेदारी भी बढ़ती गयी। 1920 के दशक में खिलाफत आंदोलन की शुरुआत हुई जिसने पहली बार मुस्लिम समुदाय के लोगों को राजनैतिक परिधि में लाया गया। इन सब बातों का अर्थ यह था कि अलग पहचान के आधार पर खासकर गैर-धार्मिक हित को ध्यान में रखकर बीज बोया जा रहा था। लेकिन ये सब धर्म के आड़ में ही हो रहा था। औपनिवेशिक शासन ने 1930-32 गोलामेज सम्मेलन का आयोजन किया गया जहाँ पर लगभग सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व था।

हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों की अंग्रेजी शिक्षा सीमित थी। शिक्षित हिन्दुओं और मुसलमानों में सरकारी नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी। इससे उनके अंदर यह महसूस हुआ कि अन्य समुदाय की वजह से उन्हें सरकारी नौकरियाँ नहीं मिल पा रही थीं तथा राजनीतिज्ञ संस्थानों में उन्हें प्रतिनिधित्व भी नहीं मिल रही थी। हिन्दु वर्ग के लोग भी यह मानते हैं कि मुस्लिम वर्गों की वजह से उनके हित पूरे नहीं हो रहे थे तथा मुस्लिम समुदाय वर्ग के लोग यह मानने लगे कि हिन्दुओं के कारण उनके हित पूरे नहीं हो रहे थे। साम्प्रदायिकता के संदर्भ में विभिन्न धार्मिक समुदायों के गैरधार्मिक हित एक दूसरे के विरोधी बन जाते हैं। इस प्रकार भारत में सांप्रदायिकता का विकास 19वीं सदी के अंत से देश के बंटवारे तक हुआ।

### अभ्यास प्रश्न 1

**टिप्पणी:** क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) सांप्रदायिकता क्या है?

---



---



---



---



---



---



---



---



---

- 2) सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक हिंसा में क्या संबंध है?

सांप्रदायिकता

---

---

---

---

- 3) भारत में सांप्रदायिकता की उत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

---

---

---

---

#### 10.4 सांप्रदायिकता और राज्य

सांप्रदायिकता प्रायः विभिन्न समुदायों के बीच सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देती है। भारत में ऐसे सांप्रदायिक हिंसा के कई उदाहरण हैं। सांप्रदायिक हिंसा धर्म का राजनीति में इस्तेमाल करने का परिणाम है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में, सांप्रदायिकता चुनावी राजनीति का भाग बन गयी है। के. एन. पाणीकर (1990) के अनुसार राजनीति एवं सांप्रदायिकता एक दूसरे के पूरक बन गये हैं, तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह और मजबूत हुई है। राज्य सांप्रदायिकता को रोकने में या उसके फैलने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका कर सकती हैं। सांप्रदायिकता के ऊपर राज्य की भूमिका की प्रकृति इस बात पर निर्भर करती है कि राज्य पर किसी समुदाय का कितना दबाव है तथा राज्य में तैनात उसके कर्मी किस पृष्ठभूमि से आते हैं, तथा उनका राजनैतिक संदर्भ क्या है। इस प्रकार राज्य विभिन्न समूहों एवं विभिन्न वर्गों के दबाव में कार्य करता है। इसमें धार्मिक समुदाय भी शामिल है। जैसा कि आपने ऊपर पढ़ा है औपनिवेशिक शासन ने धार्मिक विभाजन को बढ़ावा दिया। उनकी नीति भेदभाव एवं पक्षपातपूर्ण रही है। सी.पी. भांभरी के अनुसार, स्वतंत्रोत्तर काल में धार्मिक पिछ़ड़ापन एवं धार्मिक टकराव ज्यादा बढ़ा। इसका संदर्भ, भेदभाव, पक्षपात एवं ब्रिटिश सरकार की विभाजनकारी नीतियाँ प्रमुख थीं जो कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में प्रमुखता से दिखाई दी। भारत में राज्य का स्थान विरोधीभासी स्थिति में है, एक तरफ इसे नियम एवं कानूनों के तथा नयी तकनीक के हिसाब से कार्य करना है वहीं दूसरी तरफ इसे समाज के नियमों के अनुसार भी चलना है जहाँ रीति-रिवाज, प्रतीक सामाजिक नियम प्रचलित हैं। यदि राज्य इन पारंपरिक रीति-रिवाजों के विरोध के कार्य करता है तो वह समाज की वफादारी एवं निष्ठा खो देगा। इनमें सबसे प्रमुख उदाहरण मुस्लिम पर्सनल लॉ (1985), आपरेशन ब्लू स्टार (1984), सबरीमाला (2019) संबंधित मुद्दे हैं। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, विभिन्न वर्ग राज्य पर दबाव बनाने की कोशिश करते हैं, तथा वे राज्य में अपना प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं। राज्य एक प्रकार से विभिन्न विचारधाराओं एवं प्रवृत्तियों का स्थल बन जाता है जिसमें धर्मनिरपेक्षवादी एवं सांप्रदायवादी भी शामिल हैं। समाज की ही तरह राज्य में भी विभिन्न विचारधाराओं के बीच मुकाबला होता है जैसे

सांप्रदायिकता बनाम धर्मनिरपेक्षता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राज्य ने टकरावों के प्रबंधन की रणनीति अपनाई जिसमें सहयोग एवं उत्पीड़न दोनों ही शामिल है। यह सांप्रदायिकता एवं जातिवाद से समझौता भी करता है तथा शोषक वर्ग धार्मिक भावनाओं को भड़का कर समाज में शोषक को बढ़ावा देता है। जोया हसन (1990) ने यह दलील दी कि राज्य ने धार्मिक कट्टरपंथियों के सामने आत्म समर्पण कर दिया है जिसमें मुस्लिम महिला बिल एवं राम जन्म भूमि केस शामिल है।

## 10.5 सांप्रदायिकता और मीडिया

मीडिया अपने नये और पुराने रूप में, विचारधाराओं को फैलने में मदद करता है। जैसा कि जरगन हैबरमार्स ने यूरोप के संदर्भ में कहा है कि जन संगठनों क्लब, अखबार, नोवेल, टेक्स्ट बुक इत्यादि ने सार्वजनिक क्षेत्र (पब्लिक सफीयर) विचारों को फैलाने के काफी मदद की थी। बैंडिक्ट एंडरसन ने उदाहरण के तौर पर राष्ट्र को “काल्पनिक समुदाय” (Imagined Community) माना है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति कल्पनातीत विचारों का प्रिंट मीडिया ने 18वीं सदी से की थी।

भारत में सांप्रदायिकता के संबंध में मीडिया सांप्रदायिकता को बढ़ाने में एक प्रभावी भूमिका अपनाता है। इसकी भूमिका काफी अहम होती है जब यह सांप्रदायिक दंगों एवं हिंसा को रिपोर्ट करता है एवं उस पर टिप्पणी करता है। किस प्रकार इसमें हिंसा बढ़ी है, उसके कारण क्या है, नेताओं की भूमिका किस प्रकार की है तथा विभिन्न समुदायों एवं नेताओं की भूमिका क्या है। मीडिया में प्रिंट मीडिया, अखबार, मैगजीन, और इलेक्ट्रोनिक मीडिया में टेलीवीजन चैनल तथा सोसियल मीडिया में वाटसऐप, फेसबुक ट्रिवटर तथा मेल शामिल हैं। हालांकि मीडिया लोगों में जागृति पैदा करने में निर्णायक भूमिका निभाता है, लेकिन, कई अवसरों पर इसने देश में सांप्रदायिक विभाजन में भी योगदान दिया है। हाल ही के वर्षों में, जाली खबर (फेक न्यूज) बहुत आम बात बन गयी है जिससे समाज में सांप्रदायिक तनाव पैदा होता है। मीडिया की खबरें बहुत सी अफवाहों पर आधारित होती हैं जिनका सत्यापन नहीं होता है। सोशल मीडिया की पहुँच अब बहुत ज्यादा है जो कि पहले अन्य मीडिया की नहीं थी। इस पर सेंसरशिप का भी नियंत्रण नहीं है इसलिए कोई भी सूचना जिसमें हिंसा की बात हो, विभिन्न समूहों में बड़ी तेजी से फैलती है।

### अभ्यास प्रश्न 2

- टिप्पणी:** क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।
- ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।
- 1) राज्य की भूमिका सांप्रदायिकता को बढ़ाने में किस प्रकार की होती है?
- .....
- .....
- .....
- .....
- .....
- .....

.....

.....

.....

.....

## 10.6 सारांश

सांप्रदायिकता एक विचार धारा है जिसके अनुसार पर समुदाए धर्म के आधार बनते हैं तथा किसी एक समुदाय लोगों के हित एक समान होते हैं दूसरे धार्मिक समुदायों के हितों से भिन्न होते हैं। राजनीतिक संदर्भ में सांप्रदायिकता, सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा देती है। यह इसलिए होता है क्योंकि राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका इसमें अहम होती है। कुछ राजनीतिक कार्यकर्ता तथा नेता समुदायों के बीच के अंतरों को साम्प्रदायिकता में बदल देते हैं। पिछले कुछ समय में सोशल मिडिया भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत में सांप्रदायिक हिंसा की जड़ों को औपनिवेशिक काल से जुड़ी हुई हैं। पिछले कुछ सालों में सोसियल मिडिया सांप्रदायिक विभाजन का कारण बन गया है।

## 10.7 संदर्भ सूची

चंद्र, बिपन, (1988), मुखर्जी, मृदुला, मुखर्जी, आदित्य, महाजन, सुचित्रा, एवं पाणिकर, के. एन. (1988) इंडिया'स स्ट्रगल फॉर इंडेपेंडेंस, नई दिल्ली, पेंगविन।

बटबयाल, राकेश, (2005), कम्युनलिज्म इन बंगाल : फर्म फोमिन टू नौखाली, 1943-47, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन।

भाँभरी, सी. पी. (1990), "स्टेट एंड कम्युनलिज्म इन इंडिया", सोशल साइंटिस्ट, खंड, 18, नंबर, 8-9, अगस्त-सितंबर, 1990, पेज 22-26.

हसन, जोया (1990), "चेंजिंग ओरियेंशन ऑफ द स्टेट एण्ड इमरजेंस ऑफ मेजोरिटेरिनिज्म इन द 1980" पाणिकर, के. एन (1990), "इन्ट्रोडक्शन", सोसियल साइंटिस्ट, वो. 18, नं. 8-9 अगस्त-सितम्बर

## 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### अभ्यास प्रश्न 1

- 1) सांप्रदायिकता एक विचारधारा है जिसके अनुसार किसी समुदाय के सदस्य अपने, दूसरे समुदायों तथा राष्ट्रवाद एक समान दृष्टि साझा करते हैं तथा जो कि धर्म पर आधारित होती है। इसके तीन प्रमुख तत्व है :- प्रथम, धार्मिक समुदाय के सदस्य समान हित साझा करते हैं, द्वितीय, दो अलग-अलग धर्म के सदस्य समान हित साझा नहीं करते तथा तीसरा, विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच रिश्ते शत्रुतापूर्ण होते हैं।
- 2) सांप्रदायिकता एवं सांप्रदायिक हिंसा दोनों अलग है लेकिन दोनों एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। सांप्रदायिकता एक विचारधारा है जो लोगों को धार्मिक मूल्यों का प्रवचन

देती है कि एक धार्मिक समुदाय के लोग समान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हित साझा करते हैं जो दूसरे धार्मिक समुदायों के हित से भिन्न हैं। जबकि सांप्रदायिक हिंसा विभिन्न समुदायों के बीच हिंसात्मक अभिव्यक्ति है।

- 3) यह 19वीं सदी के दूसरे मध्य में उभर कर सामने आया, जो कि उपनिवेश काल था। यह ब्रिटिश सरकार की फूट डालो एवं राजनीति करो की नीति थी। यह एक बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा उपनिवेशिक शासन का विरोध जताने वाला कदम था। यह बुद्धिजीवी वर्ग सरकारी नौकरियों में धार्मिक आधार पर आरक्षण देने की माँग रहा था। औपनिवेशिक शक्ति ने 1909 की मॉले-मिन्टो सुधार द्वारा अलग प्रथक निर्वाचित मंडल को लागू किया गया। जिसके परिणामस्वरूप, भारत में सांप्रदायिकता की उत्पत्ति हुई।

## अभ्यास प्रश्न 2

- 1) राज्य सांप्रदायिकता को बढ़ावा देने में दो तरह से भूमिका निभाता है, एक यह ऐसी नीतियाँ बनाता है जो या तो सांप्रदायिकता को बढ़ाती है या उसे कम करती है, दूसरा यह ऐसी संस्थाओं या लोगों के खिलाफ कार्यवाही कर सकता है जो सांप्रदायिक हिंसा फैलाते हैं। राज्य की भूमिका उन लोगों पर निर्भर करती है जिनका राज्य पर नियंत्रण या दबाव होता है।
- 2) मीडिया एवं सांप्रदायिकता एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। मीडिया भी सांप्रदायिकता को बढ़ाने एवं इसके विरुद्ध आवाज उठाने में अहम भूमिका निभाता है। 21वीं सदी के दूसरे में सोसियल मीडिया भारत में सांप्रदायिकता को बढ़ाने में बहुत निर्णायक भूमिका निभा रहा है। प्रायः मीडिया जाली खबर फैलाता है, तथा ऐसी सूचनाएँ देता है जो कि सांप्रदायिकता को बढ़ाने में मदद करती हैं।

THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY